www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
शनिवार 13 अप्रैल 2019

दैनिक जागरण

बगैर सोचे बोलना बगैर निशाना साधे गोली चलाने जैसा है

चुनावी चंदे का सवाल

चुनावी चंदे का सवाल एक बार फिर सतह पर है। सुप्रीम कोर्ट ने चुनावी बांड की व्यवस्था खत्म करने को लेकर दी गई याचिका पर सुनवाई करते हुए सभी राजनीतिक दलों को आदेश दिया है कि वे इस बांड के जरिये हासिल किए गए चंदे का विवरण सीलबंद लिफाफे में निर्वाचन आयोग को सौंपें। हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने चुनावी बांड खत्म करने की मांग पर अभी कोई अंतिम फैसला नहीं दिया है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि चंदे के इस तरीके पर निर्वाचन आयोग को भी आपत्ति है। उसने यह आपत्ति तभी जताई थी जब चुनावी बांड संबंधी कानून आकार लेकर रहा था, लेकिन तब सरकार की ओर से यह दलील दी गई कि नई व्यवस्था पहले से पारदर्शी होगी। यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि ऐसा नहीं हुआ और चुनावी बांड की व्यवस्था कुल मिलाकर अपारदर्शी ही है। इसका कारण यह है कि राजनीतिक दल यह बताने के लिए बाध्य नहीं कि उन्हें किसने चुनावी बांड दिया? निर्वाचन आयोग और साथ ही चुनाव प्रक्रिया साफ-सुथरी बनाने के लिए सक्रिय संगठन यह चाह रहे हैं कि चुनावी बांड खरीदने वाले का नाम उजागर किया जाए ताकि यह पता चल सके कि कहीं किसी ने किसी फायदे के एवज में तो चुनावी बांड के जरिये चंदा नहीं दिया? निःसंदेह चुनावी बांड के जरिये चंदा देने वालों की गोपनीयता बनाए रखने के पक्ष में यह एक तर्क तो है कि उन्हें वे राजनीतिक दल परेशान कर सकते हैं जिन्हें चंदा नहीं मिला, लेकिन यह आशंका दूर की जानी भी जरूरी है कि कहीं किसी लाभ-लोभ के फेर में तो चुनावी चंदा नहीं दिया जा रहा?

फिलहाल यह कहना कठिन है कि चुनावी बांड का भविष्य क्या होने वाला है, लेकिन लगता यही है कि इन बांडों के जरिये चंदे का कानून बनने से हम एक अपारदर्शी व्यवस्था छोड़कर दूसरी अपारदर्शी व्यवस्था के दायरे में आ गए हैं। इसके पहले राजनीतिक दलों को 20 हजार रुपये से कम के चंदे का विवरण न बताने की छूट थी। इसका जमकर दुरुपयोग हो रहा था और कई राजनीतिक दल यह कहते थे कि उन्हें करोड़ों रुपये का चंदा 20-20 हजार रुपये से कम में ही मिला। चुनावी बांड की व्यवस्था बनने के बाद छूट की यह सीमा दो हजार रुपये कर दी गई। राजनीति पैसे का खेल है। बिना धन के राजनीति और राजनीतिक दलों का संचालन नहीं किया जा सकता। यह किसी से छिपा नहीं कि छोटे-बड़े राजनीतिक दल चुनावों के दौरान पैसा पानी की तरह बहाते हैं। अगर चुनावी चंदे की पारदर्शी व्यवस्था नहीं बनती तो राजनीति के कालेधन से संचालित होने की आशंका को दूर नहीं किया जा सकता। विडंबना यह है कि राजनीतिक दल चुनावी चंदे की पारदर्शी व्यवस्था बनाने के लिए न तो एकमत हैं और न ही उत्साहित। चुनावी बांड संबंधी कानून बनते समय कई राजनीतिक दलों ने उसका विरोध तो किया था, लेकिन किसी ने नहीं बताया कि आखिर चुनावी चंदे में पारदर्शिता कैसे लाई जाए? इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि राजनीतिक दलों को विदेश से मिलने वाले चंदे का कानून भी पारदर्शी नहीं है।

लोकतंत्र का महायज्ञ

लोकतंत्र के महायज्ञ की शुरुआत हो गई और यह सिलसिला 19 मई तक जारी रहेगा। इस बार अच्छी बात यह है कि मतदान को लेकर लोगों में खासा उत्साह देखा जा रहा है। उत्तराखंड के परिप्रेक्ष्य में देखें तो तो यहां की पांचों लोकसभा सीटों पर जिस तरह से तेज धूप के बीच मतदान केंद्रों में मतदाताओं की लंबी कतार नजर आई, उसे मतदान के प्रति लोगों की जागरूकता के रूप में देखा जा सकता है। हालांकि मतदान की वास्तविक स्थिति शुक्रवार को पोलिंग पार्टियों के वापस आने के बाद ही स्पष्ट हो पाएगी। उम्मीद की जानी चाहिए कि मतदान का यह आंकड़ा बीते वर्षों की तुलना में बढ़े। यह इसलिए भी कहा जा रहा है, क्योंकि मतदान के प्रति प्रदेश में लगातार जागरूकता बढ़ रही है। राज्य गठन के बाद हुए लोकसभा चुनावों के मतदान प्रतिशत पर नजर डालें तो 2004 में 48.74, 2009 में 53.43 और 2014 में 61.67 प्रतिशत मतदान हुआ था। निश्चित तौर पर यह सुदृढ़ लोकतंत्र की ओर मजबूती से बढ़ रहे कदमों की निशानी है। इस बार इसके बढ़ने की उम्मीद इसलिए भी की जा रही है, क्योंकि चुनाव आयोग ने मतदान जागरूकता के लिए स्वीप के जरिये कई कार्यक्रम चलाए। इसके अलावा विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं और सामाजिक संगठनों ने मतदाता जागरूकता के कार्यक्रम चलाए थे। विभिन्न विश्वविद्यालय एवं निजी संस्थानों तक जागरूकता क्विज आदि का भी आयोजन किया गया। इसके साथ ही दिव्यांग एवं बुजुर्ग मतदाताओं के लिए आयोग की ओर से किए गए इंतजामों ने इन मतदाताओं की मतदान केंद्र तक पहुंचने की झिझक को समाप्त किया। पिंक बूथ के जरिये महिला मतदाताओं ने भी मतदान के प्रति अपना रुझान दिखाया। इन सभी तैयारियों का असर मतदान के दौरान देखने को मिला। मतदान के दौरान बुजुर्ग, महिला एवं युवा मतदाताओं की लंबी कतारें लगना लोकतंत्र की मजबूती की आस भी जगा रहा है। इन सबके बावजूद मतदान के शुरुआती घंटों में कई जगह ईवीएम में आने वाली गड़बड़ी कहीं न कहीं पुख्ता तैयारियों के दावों को आईना दिखाती है। कई जगह अधिकारी भी आदर्श आचार संहिता को लेकर गफलत में दिखे।

भारत की जरूरत हैं दलाई लामा

गोपालकृष्ण गांधी

आज की वर्तमान सरकार ही नहीं, हिंदुस्तान की सारी सरकारें दलाई लामा के विषय में संकोची रही हैं। क्या चीन की प्रतिक्रिया से इतनी घबराई हुई हैं?

यह राहतकारी है कि दलाई लामा अस्पताल से बाहर आ गए। उनकी उम्र (83 साल) में थोड़ी-सी भी बीमारी चिंता का कारण बन जाती है। सो प्रार्थना कर रहा हूं कि ईश्वर उन्हें शक्ति युक्त करे और सीधे उन्हीं को कह रहा हूं- ऋषि! हमें आपकी बहुत जरूरत है। भारत को आपकी जरूरत है। इंसानियत को, हमदर्दी को, विश्व-शांति को, विश्व-बंधुत्व को आपकी जरूरत है। हम भारत के लोग जानते हैं कि दलाई लामा जैसी हस्ती हमारे बीच हैं, लेकिन उस ज्ञान को, उस बात को, हमने अपने दिमाग और दिल के एक कोने में डाल दिया है। ठीक वैसे, जैसे घरों में लोग किसी संदूक में कोई कीमती असबाब रख देते हैं, जैसे कि पुरानी रुद्राक्ष की जप-माला जो इतनी शिथिल नहीं कि स्पर्श से टूट जाए, लेकिन इतनी मजबूत भी नहीं कि उसे लेकर हम जाप करें। या कोई पुरानी तस्वीर, कोई खत, कभी किसी जमाने में लिखा हुआ दस्तावेज जिससे आज किसी का कोई सरोकार नहीं, जो हर रोज के काम के लिए जरूरी नहीं, जिसकी हमें कद्र है, जरूरत नहीं, जो यादों की दुनिया में रहता है, फायदों की दुनिया में नहीं। दलाई लामा को हमने संभाल के रख दिया है, एक सिरे पर। यहां दोनों शब्द काबिल-ए-गौर हैं- संभाल और सिरा...। संभाला है हमने जरूर उनको। आश्रय दिया है, रहने को जगह। वह खुद कहते हैं, भारत ने उनको शरण दी है, पनाह दी है। शरण जो शब्द है, वह बुद्ध संस्कृति में बहुत महत्व रखता है। बुद्धम् शरणम् धम्मम् शरणम् संघम् शरणम्! इसलिए दलाई लामा कहते हैं कि तिब्बत से भागते हुए जब वह भारत पहुंचे तब पंडित नेहरू की सरकार ने और भारत की जनता ने उनको जो शरण दी, वह पुनर्जन्मी शरण थी। उस शरण से उनको न केवल रहने को जगह मिली, बल्कि उनके अस्तित्व को आदर मिला, उनकी पुरातन संस्कृति, उनके इतिहास, उनकी तिब्बती सभ्यता को मर्यादा मिली। चीन ने भले ही तिब्बत की देह को अपना बनाया, भारत ने तिब्बत की आत्मा को संभाला। यह कितने देशों के बारे में कहा जा सकता है? कितने देश हैं दुनिया में, जिन्होंने किसी एक व्यक्ति, किसी एक समुदाय को नहीं, बल्कि एक पूरी सिफत को, एक तमाम तहजीब को, एक मुल्क के जज्बात को अपना बनाया? दलाई लामा यह जानते हैं, बार-बार कहते हैं। अपने अंदाज में कहते हैं, मेरा जन्म तिब्बत में हुआ, पर भारत में मैं पला हूं। यहां की दाल-रोटी मेरी हर नस में है। यह हकीकत है।

दूसरी हकीकत है- सिरा। पनाह दी है भारत ने, पर फिर वह संदूक जो ठहरा। एक सिरे में, खाट के नीचे जहां वह नजर न आए, कोने में जो कि किसी के रास्ते में न आए, जिसकी जगह किसी और काम में न होए, वह सिरा। हमने धर्म अपनाया, शरण दी। फिर... सिरा-शरणम् गच्छामि। कोना-शरणम् गच्छामि। हाशिया-शरणम् गच्छामि। धर्मशाला वह कोना है। बेहद सुंदर, बेहद शांतमय। बेहद स्वास्थ्य-संपन्न। हिमालय की गोद कोई मामूली जगह नहीं। रमणीय है, स्मरणीय है, लेकिन मेरा मतलब भौतिक सिरे से नहीं है। जब मैं कहता हूं कि दलाई लामा को हमने एक सिरे में रख डाला है तो मेरा मतलब है दिमागी सिरे से। उनको हमने, हिंदी-नुमा अंग्रेजी में कहें तो एडजस्ट कर दिया है। वह महापुरुष हैं, धर्म-पुरुष हैं, गुरु-समान, प्रणम्य। उनको आदर मिल गया है, प्रणाम मिलता है और इससे आगे क्या करने की जरूरत है? हाय जरूरत! क्यों और कैसी जरूरत?

अवधेश राजपूत

यहां मैं कहे देता हूं कि मेरा उद्देश्य दलाई लामा को राजनीतिक रंगों में रंगने का नहीं है। उनके विवेक ने, उनकी बुद्धि ने, उनकी साफगोई समझ ने उनको राजनीति से दूर, सुदूर रहने को कहा है। भारत और चीन के बीच उनके कारण कोई तनाव हो, ऐसा उन्होंने कुछ न करना अपना एक बुनियादी कर्तव्य माना है और उसका पालन किया है। भारत की भीतर की राजनीति में तनिक भी दखल न देने का भी उन्होंने आरंभ से अपना रवैया बनाया है। यह भी उतना ही सराहनीय है। यह भी कहना ठीक होगा कि किसी राजनीतिक दल ने भी उन्हें राजनीति में लाने की कोशिश नहीं की है। सबने उनका धार्मिक महत्व पहचाना है और उसका आदर किया है।

दलाई लामा ने जो भी कुछ सार्वजनिक बयान दिए हैं तो वे भाईचारे और अमन के पक्ष में दिए हैं। सद्बुद्धि करुणा, प्रेम के पक्ष में। इतना ही नहीं, उन्होंने बुद्ध के सर्वोपरि शिष्य होते हुए भी बौद्ध धर्म को भारत के अन्य धर्मों से बड़ा या ऊंचा दिखाने का प्रयत्न नहीं किया है। इस संयम से दलाई लामा का कद बहुत ऊंचा बना है। आज हमारे देश में कई ऊंचे कद के लोग हैं- सियासत में, उद्योग में, विज्ञान और तकनीक में, लेखक वर्ग में। फिल्म, खेल जगत में सितारों की कमी नहीं। धार्मिक संस्थाओं में भी पहुंचे हुए लोग मिल जाते हैं, लेकिन दार्शनिक जो कहलाए जाते हैं, वैचारिक मार्गदर्शी, उनकी सख्त कमी है। गांधी, विनोबा, बाबासाहब आंबेडकर, जयप्रकाश सामाजिक दार्शनिक थे। उनके विचार राजनीति से जुड़े होते हुए भी, राजनीति से ऊपर थे- समाज को संबोधित करते थे। दक्षिण में ईवी रामास्वामी पेरियार भी ऐसे थे। आज ढूंढ़ने पर भी ऐसा दार्शनिक नहीं मिलता है भारत में। धर्मगुरु और महंतों में अंतर कम है। महंत मिल जाएंगे, मुनि नहीं। राजयोगी मिल जाएंगे, ऋषि नहीं।

दीया तले अंधेरा, यह हम सुन चुके हैं। दलाई लामा हमारे बीच होते हुए भी हमारे हृदय के मध्य नहीं, उसके एक सिरे पर हैं, इसलिए मैं उन्हें अंधेरे तले दीया मानता हूं। हमें उस दीये को अंधेरे से बाहर लाना है। उसके उजाले से अपना सामाजिक मार्ग ढूंढ़ना है। छल, कपट, लालच, ईर्ष्या, हिंसा... इनका सामना समाज में कैसे करें, इसका बोध दलाई लामा से ज्याद कौन देगा? लेकिन नहीं... हम उनकी ओर देख उनकी हिदायत नहीं मांग रहे हैं। और वह जो ठहरे संयमी, वह खुद अपना उपदेश हम पर नहीं थोपने वाले। रही बात सरकार की। आज की वर्तमान सरकार ही नहीं, सारी सरकारें हिंदुस्तान की, दलाई लामा के विषय में संकोची रही हैं। क्या चीन की प्रतिक्रिया से इतनी घबराई हुई हैं? मेरी समझ में चीन से इस बात पर घबराना अनावश्यक है। हम तिब्बत की संस्कृति का पोषण जरूर चाहेंगे, पर उसका चीन में समावेश हम स्वीकार चुके हैं। समस्या यहां नहीं। दलाई लामा स्वयं तिब्बत को चीन से अलग नहीं देखते हैं, वह सिर्फ तिब्बती अध्यात्म एवं संस्कृति की और वहां की बौद्ध परंपरा की सुरक्षा चाहते हैं। तो फिर हमारी सरकारें दलाई लामा को भारत-रत्न से क्यों नहीं अलंकृत करना चाहतीं? बादशाह खान अब्दुल गफ्फार खान, नेल्सन मंडेला, मदर टेरेसा को भारत-रत्न हमने निःसंकोच ही नहीं, सहर्ष प्रदान किया है। दलाई लामा की क्या गलती है कि वह इस सर्वोपरि उपाधि से वंचित हैं? इसमें उनकी क्षति नहीं, हमारी है।

वैसे बात भारत-रत्न की नहीं। बात भारत के स्वाभिमान की है। दलाई लामा जहां भी जाते हैं, दुनिया उनमें बुद्ध का स्वरूप देखती है। केवल हम हैं, जो उनमें तथागत का दर्शन नहीं देखते। इतना कहकर अपनी बात पूरी करता हूं कि आज बाबासाहब आंबेडकर हमारे मध्य होते तो कहते, चीन से हमारा रिश्ता अपनी जगह है, हमारे अंतस से हमारा रिश्ता अपनी जगह है। दलाई लामा भारत के ही नहीं, विश्व के रत्न हैं। अंधेरे में रोशनी...। ईश्वर उन्हें दुरुस्त रखे।

(वर्तमान में अध्यापनरत लेखक पूर्व राजनयिक-राज्यपाल हैं)

response@jagran.com

खैरात के सहारे आगे बढ़ती राजनीति

डॉ. विजय अग्रवाल

पहले जमीनी समस्याएं राजनीति की धुरी हुआ करती थीं। अब अहम मसले अपनी दिशा खोकर खैरात पर आ टिके हैं

इन तीन बातों में वह कौन सी एक बात है जो सभी में समान है-तीन राज्यों के विधानसभा चुनावों में बढ़-चढ़कर कर्जमाफी की घोषणाएं, अंतरिम बजट में किसानों, गरीबों एवं मध्यवर्ग के लिए किए गए प्रावधान और कांग्रेस के चुनावी घोषणा पत्र में 20 प्रतिशत गरीबों को 72 हजार रुपये सालाना देने का वादा। इन्हें हम आसानी से 'लोकलुभावनवाद' के तत्व कह सकते हैं। एक अन्य तत्व की ओर संकेत किया था गायक भूपेन हजारिका के बेटे ने। उन्होंने नागरिकता संशोधन विधेयक का हवाला देते हुए अपने पिता को दिए गए 'भारत रत्न' अलंकार को 'लोकप्रियतावादी कदम' करार दिया था। हालांकि बाद में वह अपनी बात से पलट गए थे। लोकप्रियतावाद अंतराष्ट्रीय राजनीति में प्रयोग में लाया जाने वाला शब्द है। इसके लिए अंग्रेजी में 'पॉपुलिस्ट' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन इसे समाजवाद या राष्ट्रवाद जैसे वैचारिक शब्दों के समतुल्य समझने की भूल नहीं की जानी चाहिए। यह कोई एक ठोस राजनीतिक विचार न होकर उन देशों के राजनीतिक दलों के हाथ का एक उपकरण है जहां सत्ता आम लोगों के वोटों पर निर्भर करती है। यह कुछ ऐसे अव्यावहारिक किस्म के अस्थायी वायदों की एक पोटली होती है जिसे राजनेता अपने मतदाताओं को थमाते हैं, बिना इस बात की परवाह किए कि इसके दूरगामी राष्ट्रीय परिणाम क्या होंगे। जाहिर है इस तरह के वायदे उन बड़े वर्ग को संबोधित होते हैं जो गरीब, शोषित, कर्जदार, बीमार और लाचार होते हैं। यह लोकप्रियतावाद कुछ सीमा तक मध्यमवर्ग को भी अपनी चपेट में ले सकता है, लेकिन उससे ऊपर के वर्ग को नहीं।

जब हम लोकतंत्र में 'द पीपुल्स' की तलाश करते हैं तो वह इसी वंचित वर्ग को संबोधित होकर अपने-आप ही समाजवाद के निकट एवं अभिजात्य वर्ग का विरोधी हो जाता है। यह लोकप्रियतावाद इस मायने में इंदिरा गांधी के 'गरीबी हटाओ' जैसे कार्यक्रमों से भिन्न कहा जाएगा कि वहां बात सरकारी नीतियों की थी, लेकिन यहां ऐसी खैरात की है जिससे कुछ भी निर्मित नहीं होना है। जबकि ऐसी सभी समस्याओं का स्थायी समाधान ठोस नीतियों के माध्यम से किया जा सकता है, बशर्ते राजनीतिक इच्छाशक्ति हो। जब किसी भी देश की राजनीति के सिद्धांतों में शून्यता आने लगती है तब सत्ता और अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए वह इसी तरह के लोकलुभावनी अस्थायी बैसाखियों का सहारा लेकर अपनी यात्रा को जारी रखती है। यह भारत की ही स्थिति नही है, बल्कि पूरी दुनिया की स्थिति है।

उपनिवेशीकरण और सोवियत संघ के बिखरने के बाद से खालिस राष्ट्रवादी यानी दक्षिणपंथी एवं वामपंथी का युग पूरी तरह से समाप्त हो चुका है। कुछ समय के लिए मध्यमार्गी दक्षिणपंथियों एवं मध्यमार्गी वामपंथियों ने इस रिक्त होते स्थान में अपनी जगह बनानी शुरू की थी, लेकिन वर्तमान दशक की समाप्ति तक पहुंचते-पहुंचते यह लगने लगा है कि यह 'मध्य' शब्द अपनी अंत्येष्टि की कगार पर है और सिद्धांतों के स्तर पर पूरी दुनिया एक कॉकटेल-टाइप के वैचारिक ध्रुवीकरण की ओर बढ़ रही है। निश्चित रूप से इसका झुकाव दक्षिणपंथ की ओर है, जिसके कारण लोकप्रियतावाद का एक नया उभार दिखाई पड़ रहा है। इसलिए पूरे यूरोप की मध्यमार्गी राजनीति अपने लोकतंत्र की शक्ति, लोकतांत्रिक संस्थाओं के भविष्य और समाज में सद्भावना की स्थिति को लेकर चिंतित जान पड़ रही है। अब तो भारत की राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि क्षेत्रीय पार्टियां तक इसी राजनीतिक जुलूस में शामिल हो चुकी हैं। हालांकि इसकी शुरुआत करने का इल्जाम भी इन्हीं के सिर जाता है। 1980 के बाद उभरे क्षेत्रीय दलों ने अपनी राजनीति के लिए जिन दो मूलभूत अस्त्रों का सहारा लिया उनमें से एक था-क्षेत्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति और दूसरा था- सस्ते अनाज आदि की उपलब्धता। दक्षिण भारत के इसी पैटर्न पर जब उत्तर भारत की एक राजनीतिक पार्टी ने मुफ्त में साड़ी बांटने की घोषणा की तो उसे लेने के लिए इतनी भीड़ उमड़ी कि भगदड़ मच गई और कुछ महिलाओं की मौत हो गई। लोकप्रियतावाद का इससे सशक्त प्रमाण भला और क्या हो सकता है।

आज अमेरिका, ब्राजील, मैक्सिको, इजरायल और फिलीपींस भी लोकप्रियतावाद के सहारे दिख रहे हैं। आगे इस सूची के लंबे होने की पूरी संभावना है। इसके मूल में देशों के बिगड़ते आर्थिक हालात ही हैं, जिन्हें 'खैरात' के माध्यम से अस्थायी तौर पर संभालने की कोशिश हो रही हैं। पहले मतदाता की जमीनी समस्याएं राजनीति की धुरी हुआ करती थीं। अब मसले अपनी दिशा खोकर 'खैरातों' पर आ टिके हैं। इसने अर्थशास्त्रियों एवं राजनीतिक विश्लेषकों को चिंतित कर दिया है, क्योंकि लोकसभा चुनाव इसी लोकप्रियतावाद के घोड़े पर सवार होकर लड़े जा रहे हैं।

(लेखक पूर्व प्रशासनिक अधिकारी हैं)

response@jagran.com

तथ्य-कथ्य | विभिन्न देशों की संसद में महिलाओं की उपस्थिति

ऊर्जा

राम का अवतरण

जीवन को उन्नत और श्रेष्ठ बनाने के लिए सत् आचरण सर्वश्रेष्ठ तरीका है। भारतीय समाज ही नहीं पूरे विश्व में श्रीराम के आदर्श जीवन का गुणगान होता है। वास्तव में देखा जाए तो व्यक्ति के मन में काम-क्रोध, मोह-लोभ के हिसंक जंगली जानवर जीवन को जब विषाक्त बनाने लगें, छल-छद्म का रावण और उसकी सेना जैसे विचार-चिंतन हो जाएं तो फिर विवेक रूपी राम को इनका मुकाबला करने के लिए जागृत करना चाहिए जो ऋषियों, मुनियों, विद्वानों, अच्छे साहित्य के अध्ययन, चिंतन-मनन से ही संभव है। गोस्वामी तुलसीदास श्रीराम के जन्म के संदर्भ में 'भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी' छंद में यही संदेश दे रहे हैं कि सदाचार ही श्रीराम है। यह सदाचार बाहर से आयात नहीं किया जा सकता। इसे आंतरिक जगत में खुद ही प्रकट करना पड़ेगा। संतुलित जीवनचर्या से यह सदाचार प्रकट होगा। श्रीराम जब प्रकट होते हैं तो न ज्यादा शीत है और न गर्मी। इसमें भी संकेत निहित है कि व्यक्ति इतना ठंडा यानी आलसी नहीं हो जाए कि अकर्मण्य की श्रेणी में गिना जाने लगे और न गर्मी की तरह इतना आक्रामक कि मानवीय संबंधों को तिलांजलि दे दे। वैसे भी भारतीय ऋषियों ने अतिरेक से बचने का उपदेश दिया है।

तुलसीदास के इन गूढ़ार्थों में यह भाव विद्यमान है कि जब व्यक्ति विधिक जीवन जीता है तो उसका मन स्वतः श्रीराम जैसा हो जाता है। वह खुद 'दीनदयाल' होने लगता है। विवेक के जागृत होते ही मन की पैशाचिक प्रवृत्तियों का हनन हो जाता है। वरना नकारात्मक प्रवृत्तियां मन को लंका की तरह धूं-धूं कर जलाने लगती हैं और खुद व्यक्ति के शरीर और मन का वध होने लगता है, जबकि सदाचार से जब इस पर काबू कर लिया जाता है तो यही मन 'अ-योध्या' की तरह हो जाता है तथा विकारों के दैत्य मारे जाते हैं। मन में ऊहापोह, संशय, भय के युद्ध नहीं होते। श्रीराम की माता कौशल्या हर्षित होती हैं। साफ जाहिर है कि जीवन को कुशलता पूर्वक संचालित, पोषित और पल्लवित करने वाली माता रूपी प्रवृत्तियां हर्षित हो जाती हैं। यही है भगवान श्रीराम का अवतरण। श्रीराम जन्म नहीं, बल्कि अवतार लेते हैं। इस अवतरण को हर कोई अपने मन में करा सकता है।

सलिल पांडेय

बस्तर से सबक लेने की जरूरत

फिर से

जिन सहूलियतों के बीच शहरी लोग रह रहे हैं, वे शायद ही कभी नक्सल प्रभावित बस्तर के लोगों को मिल सकें

17वीं लोकसभा के चुनाव के लिए मतदान प्रक्रिया जारी है। क्या सोशल मीडिया, क्या प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी लगभग सभी पार्टियों के नेताओं ने जनता से कहा है कि वे ज्यादा से ज्यादा संख्या में निकलकर अपने मताधिकार का इस्तेमाल करें। ये बातें सुनने में बहुत अच्छी हैं। मगर हकीकत कुछ और है। जिस तरह के मतदान प्रतिशत पहले चरण के मतदान में सामने आए हैं, साफ है कि किसी आम शहरी के लिए मतदान का दिन एक छुट्टी से ज्यादा कुछ नहीं है।

बात सुनने में अजीब लग सकती है। मगर जब इसे पहले चरण में हुए मतदान के प्रतिशत के रूप में देखें तो जो नतीजे निकल कर सामने आ रहे हैं वे शर्मिंदगी भरे हैं। उत्तर प्रदेश का शुमार भारत के सबसे बड़े राज्यों में है। बात अगर यहां के मतदान प्रतिशत की हो तो सहारनपुर में मतदान प्रतिशत जहां 70.6 रहा तो वहीं गाजियाबाद में 57.6, कैराना में 62.10, मुजफ्फरनगर में 66.60, बिजनौर में 65.40, गौतम बुद्ध नगर में 62.70 प्रतिशत, बागपत में 63.90 प्रतिशत और मेरठ में 63 प्रतिशत रहा। यदि हम उत्तर प्रदेश के इन स्थानों पर हुए मतदान को 'बहुत' मानकर अपने पर गर्व करने की सोच रहे हैं तो हमें ठहर जाना चाहिए। प्रथम चरण में नक्सल प्रभावित छत्तीसगढ़ के बस्तर में भी मतदान हुआ है। वहां पोलिंग बूथ नंबर 52 मछकोट पर 96 प्रतिशत मतदान हुआ है तो वहीं जीरा गांव में मतदान का प्रतिशत 97 रहा है।

वहां इतनी संख्या में लोग मतदान तब कर रहे हैं जब पूरा क्षेत्र नक्सलवाद की भेंट चढ़ चुका है। छत्तीसगढ़ के जिस हिस्से की बात हम कर रहे हैं वहां वास करने वाले नक्सली सरकार से खफा हैं। विरोध स्वरूप नक्सलियों द्वारा लगातार दहशत फैलाई जा रही है और लोगों को डराया जा रहा है। ज्ञात हो कि बस्तर क्षेत्र में नक्सलियों ने चुनाव का बहिष्कार किया था। साथ ही ये फरमान जारी किया था कि यदि उनकी बात नहीं मानी गई तो मतदाताओं को इसके गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। खुद सोचिए एक तरफ 57-70 प्रतिशत मतदान और दूसरी तरफ 96-97 प्रतिशत। सवाल ये है कि क्या ऐसे मत प्रतिशत के बलबूते हम एक साफ-सुथरे लोकतंत्र और मजबूत भारत की कल्पना कर रहे हैं? जवाब है नहीं। इसके अलावा हमें ये भी देखना होगा कि जहां 96-97 प्रतिशत मतदान हुआ है उन स्थानों पर रहने वाले लोगों के हालात कैसे हैं? और उन स्थानों पर रहने वाले लोगों के हालात कैसे हैं, जहां पोलिंग का प्रतिशत 57-70 है?

सारे प्रश्नों का जवाब तलाशने पर जो बातें निकल कर सामने आती हैं वे विचलित करने वाली हैं। जिन सहूलियतों के बीच शहरी लोग रह रहे हैं, वे शायद ही कभी नक्सल प्रभावित बस्तर के लोगों को मिल सकें। इसके अलावा बात यदि इनके संघर्षों की हो तो ये लिस्ट अपने आप में इतनी लंबी है कि इसे शायद ही कभी शब्दों के धागे में पिरोया जा सके। अंत में बस इतना ही कि बस्तर के इन लोगों ने हम शहरी लोगों के मुंह पर एक ऐसा तमाचा जड़ा जिसकी गूंज हम लंबे समय तक महसूस करेंगे। बस्तर से सबक लेते हुए कुछ ऐसा करना चाहिए जिससे सच में हमारा लोकतंत्र मजबूत हो।

(साभार : आइचौकडॉटइन में बिलाल एम जाफरी)

सांसद निधि की उपयोगिता

सांसद निधि पर सवाल उठाने का समय शीर्षक से लिखे अपने लेख में सुरेंद्र किशोर ने सांसद निधि की खामियों को उजागर किया है। यह एक सच्चाई भी है, लेकिन अब इससे आगे बढ़कर इस बार संसद में पहुंचने वाले सांसदों को मिलने वाली निधि के उपयोग के लिए विशेष दिशानिर्देश और निगरानी तंत्र विकसित करने की आवश्यकता है। सांसद अथवा विधायक निधि के तहत मिलने वाला पैसा एक जनप्रतिनिधि को अपने क्षेत्र में जनसेवा का एक बेहतर विकल्प देता है, जिसे चुनाव में वह भौतिक तौर पर अपने द्वारा कराए गए कार्यों के रूप में दिखा सकता है। जिस क्षेत्र में इस निधि का उपयोग हुआ है उसे स्पष्ट रूप से देखा भी जा सकता है। किसी सांसद को एक वर्ष में यह निधि 2.5 करोड़ रुपये के दो किस्तों में मिलती है। अगले साल में पहली किस्त तभी दी जाती है जब पिछले साल की पहली किस्त का 80 प्रतिशत खर्च होने का प्रमाणपत्र मिल जाता है। दूसरी किस्त खाते में एक करोड़ से कम राशि बचे रहने पर मिलती है। साथ ही बैंक जमा राशि पर ब्याज भी देता है जो सांसद निधि में जुड़ता है। यह पूरी राशि जिला प्रशासन को दी जाती है जो सांसद के नाम से खोले गए खाते में जमा होती है। अधिकांश मामलों में पता चलता है कि सांसदों द्वारा निधि की अधिकांश राशि खर्च ही नहीं की जाती है। जनहित से जुड़े इस मुद्दे पर आज गंभीरता से विचार करने की जरूरत है।

प्रखरादित्य द्विवेदी, गोरखपुर

गुमराह करने वाला बयान

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान ने एक बार फिर मोदी के भारत के प्रधानमंत्री बनने की इच्छा जाहिर की है। उनके अनुसार अगर भाजपा सत्ता में आती है तो कश्मीर के मुद्दे को हल करना आसान होगा, परंतु सच्चाई तो यह है कि इमरान खान चाहते ही नहीं हैं कि मोदी जी फिर से प्रधानमंत्री बनें। उनका बयान साजिश का हिस्सा है। उन्होंने जानबूझकर ऐसा बयान भारत में विपक्ष को मुद्दा देने के लिए दिया है। वह भारत की जनता को गुमराह करने की कोशिश कर रहे हैं।

shubhamgupta.svm121@gmail.com

मेलबाक्स

मुफ्तखोरी ठीक नहीं

चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रलोभन दिए जाते हैं । इसके पीछे तर्क दिया जाता है कि इससे गरीबों की माली हालत सुधरेगी। इन प्रलोभनों से कितने लोगों की माली हालत सुधरी है या सुधरती है, यह जग जाहिर है। मुफ्त खोरी की आदत डालने के बजाय अगर आम आदमी की जेब काटने वाले चोर दरवाजे सख्त नियम से बंद कर दिए जाएं तो जनता के हित में ज्यादा हितकारी होगा। ऐसे उपायों की दरकार है, न कि मुफ्तखोरी से भला होने वाला है।

hemahariupadhyay@gmail.com

मकसद दलितों का वोट लेना

चुनाव के समय राजनीतिक दलों की तरफ से संविधान निर्माता डॉ. भीमराव आंबेडकर की जयंती मनाने पर रोक लगनी चाहिए। चुनावी लाभ के लिए विभिन्न दलों के नेता इस मौके पर तमाम कार्यक्रम करते हैं। इनका मकसद दलितों का वोट लेना होता है। इस बार चुनाव के समय ही उनका जन्म दिन पड़ रहा है। ऐसे में केवल सामाजिक संगठनों की तरफ से ही जन्म दिन मनाने की छूट होनी चाहिए।

विजय कुमार धनिया, नई दिल्ली

गलत बयानबाजी

कांग्रेस के सहयोगी दल नेशनल कांफ्रेंस ने अनुच्छेद 370 को स्थाई बताते हुए उसके हटने पर शेष भारत से कश्मीर का रिश्ता टूट जाने की धमकी दी है। फारूक और उमर अब्दुल्ला को पता होना चाहिए कि जब इस रियासत का भारत में विलय हुआ तब 370 का कहीं नामोनिशान नहीं था। इसे संविधान सभा ने सबसे अंत में जोड़ा। संविधान कहता है कि अनुच्छेद 370 अस्थाई है।

ajay.mittal9|khandak@gmail.com

धैर्य खोना गलत

लोकतंत्र के महापर्व के प्रथम चरण की समाप्ति के बाद अभी 6 चरण के मतदान होने बाकी हैं। लेकिन प्रथम चरण में ही देश के अंदर कुछ जगहों पर लोगों ने धैर्य को जिस तरह से खो दिया, यह गलत है। हिंसा के बल पर चुनाव करना और करवाना दोनों देश के लोकतंत्र के लिए सही नहीं है। सभी मतदाता चुनावी मर्यादा को बना कर रखें।

नीरज कुमार पाठक, नोएडा

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली काया E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं न हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय शुल्क अतिरिक्त।